डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

अन्य

प्रेम का अत्याचार

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय

लोगों की धारणा है कि केवल शत्रु अथवा स्नेह-दया-ममता से शून्य व्यक्ति ही हमारे ऊपर अत्याचार करते हैं। किंतु इनकी अपेक्षा एक और श्रेणी के गुरुतर अत्याचारी हैं, उनकी ओर हमारा ध्यान सब समय नहीं जाता। जो प्रेम करता है, वही अत्याचार करता है। प्रेम करने से ही अत्याचार करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अगर मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, तो तुमको मेरा मतावलंबी होना ही पड़ेगा, मेरा अनुरोध रखना पड़ेगा। तुम्हारा इष्ट हो या अनिष्ट, मेरा मतावलंबी होना ही पड़ेगा। हाँ, यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि जो प्रेम करता है, वह तुम्हें **जानबूझ कर ऐसे काम करने के लिए नहीं कहेगा, जिनसे तुम्हारा अमंगल होता हो। लेकिन** कौन-सा काम मंगलजनक है और कौन-सा अमंगलजनक, इसकी मीमांसा कठिन है, कई बार दो लोगों का मत एक जैसा नहीं होता है। इस तरह की अवस्था में जो कार्य करते हैं, और उसके फलभोगी हैं, उनका यह संपूर्ण अधिकार है कि वे अपने मत के अनुसार ही कार्य करें और उनके मत के विपरीत उनसे कार्य कराने का अधिकारी राजा के अलावा और कोई नहीं है।... केवल राजा ही अधिकारी है, इसी कारण वे समाज के हिताहित-वेत्ता स्वरूप प्रतिष्ठित हुए हैं, केवल उन्हीं की सद-असद विवेचना अभ्रांत है – यह मानकर उनको हमने अपनी प्रवृत्ति के दमन का अधिकार दिया है। जो अधिकार उन्हें दिया है, उस अधिकार के अनुसार वे जो कार्य करते हैं, उससे किसी के प्रति अत्याचार नहीं होता एवं सब समय और सब विषयों में हमारी प्रवृत्ति के दमन का अधिकार उनका भी नहीं है। जिस कार्य से दूसरे का अनिष्ट हो सकता है, केवल उसी के संदर्भ में प्रवृत्ति के निवारण का अधिकार उनका है, जिससे केवल हमारा अपना अनिष्ट होता हो, उस प्रवृत्ति के निवारण के अधिकारी वे नहीं हैं। जिससे केवल हमारे चित्त का अनिष्ट होता हो, उससे विरत रहने का परामर्श देने का अधिकार तो मनुष्य मात्र को है, राजा भी परामर्श दे सकते हैं और जो हमसे प्रेम करता है, वह भी दे सकता है। किंतु परामर्श देने के अलावा, वह हमें विपरीत पथ पर चलने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। समाज में सभी को यह अधिकार है कि अपने सभी कार्यों को अपनी इच्छा और मत के अनुसार संपन्न करे, बस ऐसा करते हुए दूसरे का अनिष्ट न होने दे। दूसरे का अनिष्ट होने पर वह स्वेच्छाचार कहलाएगा, दूसरे का अनिष्ट न होने पर वह स्वकर्म या स्वधर्म माना जाएगा। जो इस स्वकर्म या स्वधर्म में विघ्न डालता है और जहाँ किसी के स्वधर्म से दूसरे का अनिष्ट नहीं होता है, वहाँ भी अपने मत को प्रबल कर किसी से इच्छा के विरुद्ध कार्य कराता है, वही अत्याचारी है। राजा, समाज और प्रणयी, ये तीन इसी तरह का अत्याचार करते रहते हैं।... इस अत्याचार में प्रवृत्त होने वाले अत्याचारी अनेक हैं। पिता, माता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, कन्या, भार्या, स्वामी, आत्मीय, कुटुंब, सहृद, भृत्य, जो भी प्रेम करता है, वही कुछ न कुछ अत्याचार करता है और अनिष्ट करता है। तुमने किसी सुलक्षणा, कुलशीला, सच्चरित्रा कन्या को देखकर उससे पाणिग्रहण की इच्छा पाल ली है, ऐसे समय में तुम्हारे पिता आकर तुमसे कहेंगे कि अमुक संपन्न व्यक्ति की कन्या से ही वह

तुम्हारा विवाह करेंगे। अगर तुम व्यस्क हो, तो पिता की इस आज्ञा पालन के लिए बाध्य नहीं हो, लेकिन पितृप्रेम के वशीभूत हुए तो अच्छी न लगने पर भी उस धनिक की कन्या से विवाह कर लोगे। मान लो कोई दारिद्र पीड़ित, दैव अनुकंपा से उत्तम पद प्राप्त कर दूर देश जा रहा है, अपने दारिद्र्य से छुटकारा चाह रहा है, ऐसे समय में माता आकर रोने लगी और कहा कि उसका दूर देश जाना वह सहन नहीं कर पायेगी, उसे उन्होंने जाने नहीं ही दिया, वह मातृ प्रेम में बंधकर निरस्त्र हो गया, उसने माता के प्रेम के अत्याचार से, अपने को दारिद्र्य के लिए समर्पित कर दिया। कृती सहोदर के उपार्जित अर्थ को, अकर्मण्य, अपदार्थ सहोदर नष्ट करता है, यह प्रेम का नितांत अत्याचार है, और हिंदू समाज में प्रत्यक्ष रूप से सदा दृष्टिगोचर होता है। भार्या के प्रेम के अत्याचारों का उदहारण नव बंगवासियों के लिए देना आवश्यक है क्या? और स्वामी के अत्याचार के संबध में – धर्मतः यह कहना जरूरी है कि प्रेम के अत्याचार भी कई हैं, पर ज्यादातर अत्याचार बाहुबल के अत्याचार हैं।

(बाँग्ला से अनुवाद : प्रयाग शुक्ल)

शीर्ष पर जाएँ